शिक्षायी हिन्दी की विकास यात्रा

प्रो. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी
संकायाध्यक्ष, शैक्षणिक प्रशिक्षण एवं शोध संकाय
आर्यभट्ट ज्ञान विश्वविद्यालय, पटना, बिहार
Email: gyandeo@gmail.com

सारांश

शिक्षा के इतिहास में भाषाओं का आविर्भाव उसके प्रारंभ काल से ही देखा जा सकता है जिनका विकास मूलतः 'श्रुति' की वाचिक परम्परा के साथ शुरू हुआ। इस सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में 'हिन्दी' की विशिष्ट स्थिति स्पष्ट होती है। आज हम जिस हिन्दी को इस विशिष्ट स्थिति में पाते हैं उसके विकास की कहानी उसके अतीत में सुरक्षित है– जहाँ उसके बनने–विकसने में योगदान देनेवाले कारकों की भी सूचना उपलब्ध है। इस संदर्भ में, प्रस्तुत आलेख में शिक्षायी हिन्दी के ऐतिहासिक विकास के कुछ महत्वपूर्ण चरणों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द– *हिन्दी साहित्य, शिक्षायी हिन्दी, भाषा इतिहास, भाषा विकास।*

प्रस्तावना

शिक्षा के क्षेत्र में भाषा का व्यवहार मुख्यतः दो रूपों में होता रहा हैः एक 'अध्ययन विषय' के रूप में और दूसरा 'माध्यम भाषा' के रूप में। शिक्षा के क्षेत्र में इन्हीं रूपों में हिन्दी का प्रवेश, विभिन्न काल खंडों में हुआ। आधुनिक काल में, हिन्दी ने अपने वाचिक परम्परा की धारा से आगे बढ़ते हुए शिक्षायी हिन्दी के स्वरूप को ग्रहण किया। हिन्दी में क्या पढ़ाया जाय? इसका आधार तो मिल गया लेकिन हिन्दी कैसी पढ़ायी जाये यह विवाद के घेरे में ही रहा। इस विवाद पर विमर्श के कई चरण रहे जिनके विश्लेषण को आगे प्रस्तुत किया गया है।

आरम्भिक चरण में शिक्षायी हिन्दी

जैसा कि हिन्दी व्याकरण के इतिहास से ज्ञात होता है डच ईस्ट इंडिया कंपनी के जोहन जोषुआ केटेलर ने डच कंपनी के कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने के लिये एक किताब की रचना की जिसका नाम 'हिन्दुस्तानी ग्रामर' था और अनुमानतः यह 1695–1697 के बीच लिखी गई थी। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने केटेलर के हिन्दुस्तानी व्याकरण का परिचय देते हुए लिखा है कि ''एक यूरोपियन की लिखी हुई हिन्दुस्तानी खड़ी बोली के व्याकरण की एक पुस्तक हमारे समक्ष है जो हिन्दुस्तानी का सबसे प्राचीन व्याकरण है।'' नागराक्षर के संबंध में केटेलर ने लिखा कि ब्राह्मणों में एक प्रकार की पवित्र वर्णमाला का व्यवहार होता है जो विषेशतः काषी के विद्यालयों में पाई जाती है। साधरण हिन्दुस्तानियों में एक दूसरे प्रकार की वर्णमाला का प्रचलन है जो अक्षरनागरी कहलाती है। ज्ञात होता है कि तब दो लिपियाँ अस्तित्व में थीं। केटेलर के बाद

बेंजामिन शुल्जे ने 1744 ई. में 'ग्रेमेटिका हिन्दुस्तानिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का उद्देश्य भी विदेशियों को हिन्दी भाषा सिखाना था। व्याकरण की इस पुस्तक में भी देवनागरी की चर्चा है।

व्याकरण लेखन का यह सिलसिला आगे भी जारी रहा और 19वीं सदी के अन्त तक कई हिन्दी व्याकरण अस्तित्व में आए। यह भी तथ्य है कि 1698–1855 तक जितने भी व्याकरण उपलब्ध थे उनमें से कुछेक को छोड़कर यथा : फोर्ट विलियम कॉलेज के लल्लूलालजी ने 'हिन्दी कवायद' नाम से 1804 में व्याकरण की एक पुस्तक लिखी थी, शेष सभी विदेशियों द्वारा लिखित थी। वैसे भी किसी भाषा को सीखने का आधार व्याकरण को माना जाता रहा है। अतः संदेह नहीं कि विदेशियों द्वारा अपने कर्मियों और उनके लिए संचालित स्कूलों में हिन्दी का शिक्षण, हिन्दी व्याकरण शिक्षण का पर्याय रहा हो।

19वीं सदी का उत्तरार्द्ध शिक्षा के क्षेत्र में ब्रिटिश हुक्मरानों के सक्रिय हस्तक्षेप का काल था। वैसे तो भारत में शिक्षा का स्वरूप क्या हो, सरकार की जिम्मेवारियां क्या हों, पढ़ने–पढ़ाने की व्यवस्था कैसे की जाए इत्यादि की चर्चा 1813 के चार्टर से शुरू हो गई थी, लेकिन इसे एक स्थायी पहचान 1854 के वुड्स डिस्पैच ने दी। वुड्स डिस्पैच के पूर्व ईसाई मिशनरियों ने शिक्षा प्रसार के लिये सरल हिन्दी को अपना माध्यम बना लिया था। इन्हीं के द्वारा 1817 ई. में कलकत्ता स्कूल बुक्स सोसायटी और इस प्रकार की अन्य संस्थायें आगरा स्कूल बुक्स सोसायटी और इलाहाबाद में नॉर्दन टेक्स्ट बुक सोसायटी की स्थापना की गई। इन बुक्स सोसायटियों ने स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विषयों की पुस्तकों का प्रकाशन हिन्दी में करना शुरू किया।

1836 में पश्चिमोत्तर प्रदेश का गठन हुआ। लेकिन इस क्षेत्र में 1843 के पूर्व सरकारी शिक्षा की स्थिति दयनीय थी। अतः तत्कालीन गर्वनर जेम्स थॉमसन ने 1843–1853 के बीच शिक्षा में प्रसार की एक नीति बनाई। उसने तय किया कि इस प्रांत में शिक्षा की भाषा स्थानीय रखी जाएगी। थॉमसन ने 1844 में स्कूली पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिये एक क्यूरेटर नियुक्त किया। क्यूरेटर की जिम्मेवारी हिन्दी तथा उर्दू की उपलब्ध सामग्रियों की तालिका तैयार करने की भी थी। इसी समय जिलेवार शिक्षा की स्थिति जानने के लिये सर्वेक्षण भी कराया गया।

1854 के वुड्स डिस्पेच के बाद सभी प्रांतों में अलग से शिक्षा विभाग, जिसे तब डिपॉर्टमेंट ऑफ पब्लिक इन्सट्रक्शन कहा जाता था, की स्थापना हुई और प्रांतीय सरकारों को शिक्षा का जिम्मा सौंपा गया। इस निर्णय के आलोक में शोध हेतु चयनित राज्यों में भी इस विभाग की स्थापना हुई। अब यह विभाग अपने स्तर से प्रांतीय पढ़ाई–लिखाई का कार्य देखने लगा। लिहाजा हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों की तैयारी इस विभाग के जिम्मे आ गई। जैसा कि प्रारम्भिक इतिहास से पता चलता है हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों के निर्माणकर्ता वही होते थे जो शिक्षा विभाग के कर्मचारी थे। शिवप्रसाद सितारे हिन्द भी इसी विभाग में इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल थे, जिन्होंने हिन्दी की कई पाठ्यपुस्तकों की रचना की।

हालांकि इस काल में विषय और लिपि को लेकर हिन्दी और उर्दू का विवाद तीखा हो चला था। फिर भी ब्रितानी हुक्मरानों ने अलग–अलग लिपियों में इन दोनों भाषाओं के लिये एक

जैसी सामग्री वाली किताबों का प्रावधान कर रखा था। 19वीं सदी के अंतिम वर्ष में देवनागरी को पश्चिमोत्तर प्रांत की कचहरी भाषा होने का अवसर मिला। जबकि बिहार में यह 1873 से ही अस्तित्व में थी। कचहरियों में देवनागरी के पदापर्ण के साथ भाषायी परिदृश्य बदलने लगा।

बीसवीं सदी में शिक्षायी हिन्दी का स्वरूप

बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध 'शिक्षायी हिन्दी' के सर्वथा भिन्न स्वरूप को उद्घाटित करता है। यह वह काल था जब 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ हिन्दी भाषा और साहित्य तथा गद्य को एक नई दिशा मिल रही थी। वहीं दूसरी ओर हिन्दी पद्य में खड़ी बोली ने भी अपना स्थान बनाना शुरू कर दिया था। अन्य कई गतिविधियां इस काल में अपना अस्तित्व कायम कर चुकी थीं जिनमें आर्य समाज की हिन्दी विषयक गतिविधि, काषी नागरी प्रचारणी सभा की नागरी के समर्थन में की जाने वाली गतिविधियां तथा राष्ट्रीय आंदोलन प्रमुख थे, जिनका शिक्षायी हिन्दी पर प्रभाव दिखाई पड़ता है।

शैक्षिक कार्यों में आर्य समाज की गतिविधियाँ चल रही थीं। इनमें हिन्दी और नागरी लिपि का प्रचार–प्रसार प्रमुखता से शामिल था। दयानन्द सरस्वती ने ही हिन्दी को आर्य भाषा की संज्ञा देते हुए इसके महत्व को रेखांकित कर दिया था। अतः आर्य समाज की शब्दावली में हिन्दी आर्य भाषा कहलाने लगी। हिन्दी का संस्कृतनिष्ठ रूप आर्यसमाज की उस कल्पना का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया जिसमें सुधरा हुआ हिन्दू समाज वैदिक आदर्शों का पालन करता हुआ दिखाया गया था। आर्य समाज के शैक्षिक अभियान में हिन्दी महज एक साधन नहीं थी बल्कि हिन्दी की स्थापना एक सांस्कृतिक मंजिल थी, किसी मंजिल तक पहुंचने का साधन नहीं। हिन्दी को एक नए शिक्षित हिन्दी समुदाय की पहचान बनाकर प्रस्तुत करने में आर्य समाज आन्दोलन ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

1905 के बंग–भंग विभाजन के खिलाफ उठे 'स्वदेशी' की भावना ने शिक्षा को भी प्रभावित किया और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की जरूरत महसूस की जाने लगी। इस प्रयास को अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को लाने की कोशिश के रूप में समझा जा सकता है। इस कालखंड में हिन्दी अधिक व्यवस्थित रूप में उभरी। इन परिस्थितियों में शिक्षायी हिन्दी का जो तत्कालीन स्वरूप निर्मित हुआ उसे ही 'शिक्षायी हिन्दी' का प्रथम व्यवस्थित रूप माना जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि इस काल विशेष में एक अध्ययन विषय एवं माध्यम भाशा दोनों ही रूपों में स्कूली शिक्षा में हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान मिला। यही कारण है कि शिक्षायी हिन्दी की विकास यात्रा को जानने के लिए यह काल रेखांकन के योग्य है।

उभरते हुए राष्ट्र की भाषा के रूप में हिन्दी की पहचान तो कर ली गई लेकिन शिक्षायी विषय के रूप में इसे अंग्रेजी के प्रभाववृत्त के भीतर ही विकसित किया गया। फलतः जिस साँचे में अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी, उसी साँचे में हिन्दी को भी ढाल लिया गया। हिन्दी प्राइमर और रीडर, अंग्रेजी प्राइमर व रीडर की तर्ज पर ही लिखे अथवा बनाये गये। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1932 में जो रीडर बनाई उसमें भी इसके चिन्ह देखे जा सकते हैं। ध्यातव्य है कि व्याकरण के लिए पाठों की व्यवस्था का आधार भी अंग्रेजी व्याकरण को ही बनाया गया था। भले ही संस्कृत से

सिद्धांत लिए गये हों। जैसा कि कामताप्रसाद गुरु ने अपने हिन्दी व्याकरण की भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने अंग्रेजी व्याकरण के आधार पर ही इस व्याकरण की रचना की है। आगे उनके शब्द हैं– ''इस प्रणाली के अनुसरण का मुख्य कारण यह है कि हिन्दी के प्रारम्भ ही से इसी प्रणाली का प्रयोग किया गया है और आज तक किसी लेखक ने संस्कृत प्रणाली का कोई पूर्ण आदर्श उपस्थित नहीं किया। वर्तमान प्रणाली के प्रचार का दूसरा कारण यह है कि इसमें स्पष्टता और सरलता विशेष रूप से पाई जाती है और सूत्र तथा भाष्य दोनों ऐसे मिले रहते हैं कि एक ही लेखक पूरा व्याकरण विशद रूप में लिख सकता है। हिन्दी भाषा के लिए वह दिन सचमुच बड़े गौरव का होगा, जब इसका व्याकरण अष्टाध्यायी और महाभाष्य के मिश्रित रूप में लिखा जाएगा, पर वह दिन अभी बहुत दूर दिखाई देता है'' (गुरू, 1921, पृ. 4द्ध)। 1921 में प्रकाशित इस हिन्दी व्याकरण से यह पता चलता है कि अंग्रेजी के प्रभाववृत में ही हिन्दी शिक्षण चल रहा था।

हिन्दी–हिन्दुस्तानी विवाद और पाठ्यपुस्तकें

यद्यपि शिक्षा व्यवस्था के तत्कालीन अंग्रेजी ढांचे में हिन्दी ढल गयी किन्तु हिन्दी के भीतर पहले से चला आ रहा हिन्दी–हिन्दुस्तानी का विवाद और तीखा हो गया। हिन्दी और उर्दू में फर्क करने की प्रवृति अब तक काफी गहरा चुकी थी। यद्यपि, अभी तक इस फर्क को विवाद का विषय मानने वाले लोग मौजूद थे। सरस्वती का संपादक बनने के कुछ ही समय के भीतर महावीर प्रसाद द्विवेदी इस विशय पर टिप्पणी कर चुके थे। इस टिप्पणी में उन्होंने उर्दू साहित्य को हिन्दी की परम्परा का अंग मानने के सवाल पर एक उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया था। यह कल्पना करना कठिन है कि द्विवेदी जी की राय को स्वीकारने वाले बहुतेरे लोग रहे होंगे। उर्दू के फारसीकरण की प्रतिक्रिया अब तक काफी जोर पकड़ चुकी थी। वस्तुतः दोनों भाषाओं का सिलसिला अब धर्मिक पृथकतावाद के समानांतर चल रहा था। भूमिपति और नौकरीशुदा मुस्लिम अभिजात कुटुंबों को लें या सवर्ण हिन्दू जातियों को, दोनों के लिए भाषा एक समुदाय की रचना का औजार और प्रतीक बन चुकी थी। पर जहाँ हिन्दी व उर्दू दोनों का इस्तेमाल इस उद्देश्य के लिए हो रहा था, वहीं हिन्दी, अंग्रेजी साम्राज्यवाद से लड़ने के प्रतीक माध्यम के रूप में देखी जा रही थी। उधर उर्दू की तस्वीर मुस्लिम समाज को उसकी आत्मछवि के संरक्षण में मदद दे सकने वाले साधन के रूप में उभर रही थी। हिन्दी की प्रतीकात्मक उपयोगिता जिस महत्वाकांक्षी कार्यक्रम के संदर्भ में उभरी, वह था स्वतंत्र भारत की उदीयमान कल्पना में एक अखिल भारतीय भाषा की बात जोड़ने का कार्यक्रम। इस विवाद को प्रखरता देने में सामाजिक–राजनैतिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण स्थान था। यह इन गतिविधियों का ही प्रभाव था कि लिपिगत भेद रखते हुए भी शिक्षायी हिन्दी और शिक्षायी उर्दू के रूप गढ़ दिए गए और फिर 'शुद्धता' की तलाश शुरू हो गई।

आगे आने वाले दिनों में इस शुद्धता की अस्मिता की रक्षा का भार हिन्दी पर भी पड़ा, अतः शिक्षायी हिन्दी के स्वरूप में परिवर्तन आने लगा। यह शुद्धता उस संस्कृतनिष्ठ भाषा की शुद्धता थी जिसके बिना हिन्दी के शिक्षायी स्वरूप की कल्पना भी नहीं की जा सकती। तत्सममय

शब्दों के प्रयोग की अधिकाधिक गुंजाइश और उर्दू के शब्दों से परहेज यह हिन्दी पाठ्यपुस्तकों का चरित्र बन गया। यदि उर्दू का उपयोग होता भी तो एक धर्म विशेष के पात्र की पहचान के रूप में, न कि हिन्दी भाषा के अनिवार्य अंश के रूप में। फलतः हिन्दी के विकसने का जो रास्ता निर्धारित किया गया उसमें उर्दू या उसकी विधाओं के लिये कोई स्थान नहीं था। शायद यही कारण है कि स्कूली हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों ने अब तक अपने को गजल विधि से बचाये रखा और ''लब पे आती है दुआ बनके तमन्ना मेरी'' जैसा तराना, हिन्दी पाठ्यपुस्तकों में स्थान नहीं पा सका।

हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में ऐसे पाठों की भरमार है, जिसमें न सिर्फ उर्दू से दूरी बल्कि स्थानीय भाषाओं से भी परहेज रखने की प्रवृति दिखाई देती है। इसका एक महत्वपूर्ण प्रमाण है सीताराम चतुर्वेदी द्वारा अपनी 'भाषा की शिक्षा' शीर्षक हिन्दी शिक्षण की पुस्तक में 'अश्लील' शब्दों की कोटि में 'ग्राम्य' शब्दों को स्थान देना। तब इसके संकेत मिलते हैं कि शिक्षायी हिन्दी का शुद्धतावादी मानकीकृत रूप किनसे किनारा करके चलने और किनसे मेल–मिलाप करके आगे बढ़ने का मानस रखता था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पटना विश्वविद्यालय की 1953 में छपी पाठ्यपुस्तक जो मैट्रिक की परीक्षा के लिये निर्धारित थी, में दो पाठ क्रमशः भोजपुरी और मगही से लिये गये हैं और इन दोनों ही पाठों के साथ इन भाशाओं का वर्णन है। ऐसी कोशिश और किसी पाठ्यपुस्तक में दिखाई नहीं देती। बल्कि आम अनुभव है कि शुद्धता के नाम पर एक हिन्दी शिक्षक का यह परम कर्तव्य है कि वह हिन्दी की कक्षा में पढ़ने वालों को उनकी मातृभाषाओं के प्रयोग करने से भी रोके जिन मातृभाषाओं को हिन्दी की उपभाषायें या बोलियां माना जाता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी भाषा–शिक्षण में ही नैतिक शिक्षा के उद्देश्य भी अन्तर्निहित होते दिखाई देने लगे। नैतिकता का पाठ हिन्दी पाठ्यपुस्तकों का अनिवार्य अंग बनने लगा। महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखित एवं 1903 में इंडियन प्रेस से छपी 'हिन्दी की पहली पुस्तक' में सातवां पाठ 'अच्छा लड़का', आठवां पाठ 'बुरा लड़का', नौवां पाठ 'बच्चे को गहने नहीं पहनना चाहिए' ये सभी पाठ पूर्णतः नैतिकता सिखाने वाले पाठ लगते हैं। आज भी हम हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में यह सवाल देख सकते हैं कि 'इस पाठ से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?' पाठ चाहे कविता हो, कहानी, एकांकी, यात्रा वृतांत या जीवनी संकलन सब में यह सवाल दिखाई देता है।

शिक्षायी हिन्दी और राष्ट्रीय आंदोलन

वैसे तो बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध भारतीय इतिहास में शिक्षा के क्षेत्र में विशेष महत्त्व रखता है। लेकिन इसमें भी सन् 1920 के बाद का समय शिक्षायी हिन्दी के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हो सकता है क्योंकि सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक गतिविधियों का समवेत रूप राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में उभर रहा था और राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता मिलने लगी थी। हिन्दी पाठ्यपुस्तकों को एक स्वरूप मिल गया था। अब उनके पास व्याकरण, गद्य और अपना पद्य (कविता) उपलब्ध था।

1919 के मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड समिति द्वारा प्रस्तावित द्वैध शासन के अन्तर्गत ''शिक्षा'' को

हस्तांतरित विषय मानकर स्थानीय लोगों को सौंपा गया। 1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान जब सरकारी व सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं के बहिष्कार का कार्यक्रम चला तब स्वतंत्रता की मांग से सरकारी स्कूलों से पढ़ाई छोड़ने वालों को गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं में शिक्षित करने की कोशिश भी हुई। इसी कोशिश के परिणाम थे–काशी, गुजरात और बिहार विद्यापीठ तथा इनसे सम्बद्ध राष्ट्रीय विद्यालय। इन विद्यापीठों और राष्ट्रीय विद्यालयों के पाठ्यक्रम में हर स्तर पर हिन्दी को स्थान मिला। काशी विद्यापीठ के प्रथम वार्षिक पंचांग (1922 ई.) से यह सूचना मिलती है कि एक विषय के रूप में प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं में हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य विषय के रूप में होती थी। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर निर्धारित पाठ्यक्रम एवं पाठ्य–पुस्तकों की सूचना भी इसी पंचांग में दर्ज है। संभवतः यह पहला संस्थान था जिसने शिक्षायी हिन्दी को यह स्वरूप प्रदान किया। अतः इस वर्ष का विशेष महत्व है। इसी वर्श (1923 ई.) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भी पहली बार स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी की पढ़ाई प्रारंभ हुई।

1921 में असहयोग आन्दोलन की शुरूआत के साथ बहिष्कार का कार्यक्रम कांग्रेस द्वारा चलाया गया जिसका नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथों में था। बहिष्कार कार्यक्रम के अंतर्गत सरकारी विद्यालयों का बहिष्कार करना भी था। लेकिन गाँधी यह चाहते थे कि पढ़ने वाले अपनी पढ़ाई जारी रखें इसलिए उन्होंने विद्यापीठों की स्थापना की। काशी विद्यापीठ की स्थापना भी इसी काल में हुई। विद्यापीठों में हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। लेकिन गाँधी जिस हिन्दी की बात कर रहे थे वह हिन्दी, हिन्दुस्तानी थी जिसके संबंध में उन्होंने स्वयं काशी विद्यापीठ की स्थापना समारोह के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि– ''हमारी राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी है जिसे 21 करोड़ आदमी बोलते हैं। दूसरा कर्तव्य अपनी मातृभाशा को बढ़ाना है। इसे लिख–पढ़ न सकना शर्म की बात है। जो कुछ अंग्रेजी में तालीम मिली है उसे मातृभाशा में हजम कीजिए। हिन्दू–मुसलमानों की कैसे सेवा हो सकती है, इसे सीखना है। हमें उर्दू और देवनागरी दोनों लिपि सीखना चाहिए। हमें वही हिन्दी चलाना है जिसमें संस्कृत और उर्दू मिली हो....'' (काशी विद्यापीठ पंचांग, 1922)।

हालांकि 1922 में प्रकाशित 'काशी विद्यापीठ के संकल्प पत्र' में कॉलम दो के अधीन 'संस्था के उद्देश्य ये हैं' के अंतर्गत वर्णित है कि– ''ऐसी संस्थाओं की स्थापना करना, कराना. . जो ऐसे प्रकार से हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि द्वारा शिक्षा दें जो भारतवर्ष की अवस्था और आवश्यकताओं के अनुकूल और उपयोगी हो। ऐसी संस्थाओं के लिए जो दूसरे प्रांतों में स्थापित हों जहां की प्रांतीय भाषा हिन्दी नहीं है और विद्यापीठ में सम्मिलित होना चाहें, हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि द्वारा शिक्षा देना आवश्यक न होगा। वे अपनी प्रांतीय भाषा और लिपि द्वारा शिक्षा दे सकेंगी परंतु उनके पाठ्यक्रम में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के ज्ञान का स्थान अनिवार्य होगा'' (काशी विद्यापीठ पंचांग, 1922, पृ.8)। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी और लिपि नागरी विद्यापीठों में अपना स्थान सुरक्षित कर चुकी थीं। लेकिन वहाँ यह भी शर्त थी कि प्रवेशिका तक फारसी लिपि (उर्दू) का ज्ञान परीक्षा हेतु अनिवार्य होगा। बिहार विद्यापीठ में भी इसी नीति का

पालन किया जा रहा था। हिन्दी प्रांत की यह पहली संस्था थी जिसने पहली से बी.ए. कक्षा तक की पढ़ाई का माध्यम हिन्दी को बनाया। और सिर्फ माध्यम ही नहीं बनाया वरन् पाठ्यपुस्तकें भी निर्धारित कीं। हिन्दी ज्ञान हेतु रामदास गौड़ की पोथियां तथा नागरी लिपि में सुलेख, बाल पाठशाला के पाठ्यक्रम में थे तो आगे भाशा भास्कर और श्री कामताप्रसाद गुरु के व्याकरण के साथ बंकिम–निबंधावलि भी हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें थीं।

1925 के कानपुर अधिवेशन में ''यथासंभव कांग्रेस की कार्यवाही 'हिन्दुस्तानी' में की जायेगी''– का संकल्प लिया गया। 1927 में हिन्दी को इंटर के पाठ्यक्रम में स्थान मिला। 1930 के व्यक्तिगत सत्याग्रह के दौरान राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना का दूसरा दौर चला। 1937 की वर्धा समिति की बुनियादी शिक्षा संबंधी प्रतिवेदन में 'हिन्दुस्तानी' को लाजिमी (अनिवार्य) पाठ्य विषय बनाने की अनुशंसा की गई। इसे कांग्रेसी शासन वाले प्रांतों में प्राथमिक कक्षा में लागू करने की कोशिश भी हुई। स्वाधीनता की मांग करने वाले जत्थे में शिक्षायी हिन्दी का यह स्वरूप था। दूसरी ओर सरकारी माध्यमिक स्कूलों में भी हिन्दी का स्वतंत्रा विषय के रूप में अध्ययन–अध्यापन शुरू हो गया, जो हिन्दी–उर्दू के विभाजन का परिणाम था। 1932 ई. में पं. रामचन्द्र शुक्ल के सम्पादन में 'साहित्यिक रीडर' (उच्चतर प्राइमरी कक्षाओं के लिए) का निर्माण हुआ। इस तरह 1920 से 1940 के बीच शिक्षायी हिन्दी के दो पाठ्यक्रम मिलते हैं–एक वह जो राष्ट्रीय विद्यालयों में पढ़ाया जा रहा था तथा दूसरा वह जो सरकारी स्कूलों के पाठ्यक्रम का हिस्सा था। इसी समय विशेष में कई विश्वविद्यालयों एवं बोर्डों (परीक्षा) ने हिन्दी को एक विषय के रूप में मान्यता तो दी ही, परीक्षा की माध्यम भाषा (अन्य विषयों के लिए भी) के रूप में भी हिन्दी को स्वीकार किया। हालांकि यह कार्य काशी विद्यापीठ में 1921 ई. में ही सम्पन्न हो चुका था परंतु सरकारी शिक्षा तंत्रा ने इसे बाद में अपनाया।

उपसंहार

आजादी के साथ–साथ, संविधान निर्माण की प्रक्रिया में 'हिन्दी' खास विवाद का विषय रही। और अंत में, देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी के उस रूप को 'राजभाषा' का दर्जा मिला जिसका वर्णन वर्तमान भारतीय संविधान के भाग–17 में अनुच्छेद 343 से 351 में है। शिक्षायी हिन्दी के स्वरूप को इस नयी संवैधानिक व्यवस्था ने किस तरह प्रभावित किया या नहीं किया और हिन्दी शिक्षण पर इसका कोई प्रभाव पड़ा? आजादी के बाद के दशकों में शब्दावली आयोग एवं अन्य संगठनों ने हिन्दी के स्वरूप को प्रभावित किया। भाषायी राजनीति, शैक्षिक हिन्दी के इर्द–गिर्द एक खास सांस्कृतिक वातावरण बना रही थी। जिसमें छठे–सातवें दशक की घटनाएं विषेश तौर पर उल्लेखनीय हैं। इसी दषक में 'अंग्रेजी हटाओ' और 'हिन्दी हटाओ' के नारे उत्तर–दक्षिण भारत में बुलंद हो रहे थे। वहीं दूसरी ओर कोठारी आयोग (1964–66) ने भारतीय शिक्षा की सम्पूर्णता में जांचकर जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उसमें त्रिभाषा सूत्र के साथ हिन्दी भाषा शिक्षण को सम्पूर्ण देश की स्कूली शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाने की अनुशंसा की। संशोधित राजभाषा अधिनियम द्वारा अंग्रेजी को लम्बे समय तक राजकाज में बने रहने का प्रमाणपत्र जारी कर दिया गया। साथ ही कई केन्द्रीय संस्थाओं के द्वारा शिक्षा की केन्द्रीय व्यवस्था को रूप देने

का कार्य भी शुरू हुआ। यानी इस काल खण्ड में हिन्दी के स्वरूप और उसको प्रभावित करने वाले कई कारक उभर कर आये।

संदर्भ ग्रंथ

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद (1940), *हिंदी साहित्य की भूमिका,* हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई।
2. त्रिपाठी, रामनरेश (1940), *उर्दू जुबान का संक्षिप्त इतिहास,* हिंदी मंदिर, प्रयाग।
3. त्रिपाठी, ज्ञानदेव मणि (1997), *शिक्षा की माध्यम भाषा,* साहित्य कुँज, बेतिया।
4. ग्रियर्सन, जार्ज अब्राहम (अनुवाद–किशोरीलाल गुप्त) (1957), *हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास,* हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
5. शर्मा, पद्म सिंह (1951), *हिन्दी, उर्दू और हिंदुस्तानी,* हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
6. दीक्षित, एस.एस. (1966), *नेशनलिज्म एण्ड इंडियन एजूकेशन,* स्टर्लिंग प्रा. लिमिटेड, दिल्ली।
7. दास, श्यामसुंदर (1901), *शिक्षा,* इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।
8. वाजपेयी, किशोरीदास (2007 विक्रम संवत्), *राष्ट्रभाषा का इतिहास,* जनवाणी प्रकाशन, हरीसन रोड, कलकत्ता।
9. गाँधी, महात्मा (1949), *राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी,* नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, चौथा संस्करण।
10. गुप्त, मन्मनाथ (1948), *राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास,* शिवलाल अग्रवाल एंड संस, आगरा।
11. गुप्त, लक्ष्मीनारायण (2033 विक्रम संवत्), *हिंदी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन,* लखनऊ विश्वविद्यालय।